हिन्दी दलित आत्मकथाओं के सामाजिक परिवेश का मूल्यांकन

शिखा यादव,

शोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उ0प्र0)

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उ0प्र0)

शोध सारांश

दलित विमर्श में प्रमुख स्थान दलित आत्मकथाओं का है। दलित आत्मकथाओं में लेखकों ने अपने जीवन के भोगे हुए यथार्थ क्षणों को प्रस्तुत किया है। भारतीय संविधान द्वारा भले ही दलितों को समानता का अधिकार प्राप्त है तथा उन्हें शिक्षा प्राप्त करनें एवं मन्दिरों में प्रवेश की अनुमति है किन्तु समाज के सामन्ती लोगों द्वारा उन्हें तिरस्कृत एवं अपमानित किया जाता रहा है। समाज में उन्हें अस्पृश्य घोषित किया गया है। अपनी आत्मकथाओं में दलित लेखकों ने अपने जीवन के तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं को दर्शाया है। समाज में दलितों को हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद भी भरपेट भोजन नहीं मिलता है तथा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा मकान के लिए संघर्ष करते हैं। इस प्रकार दलितों का जीवन संघर्षपूर्ण है। दलित लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं में अपने जीवन के इसी संघर्षपूर्ण क्षणों एवं सामाजिक परिवेश को वर्णित किया है।

KeyWords: *दलित साहित्य ,आत्मकथाएँ , विमर्श, सामाजिक परिवेश*

समकालीन हिन्दी साहित्य में अनेक विमर्शो की चर्चा की जा रही है जिनमें से एक दलित विमर्श है। दलित शब्द का अर्थ दबाया गया शोषित उत्पीड़ित आदि है। अर्थात जिसे समाज के द्वारा शोषित, उत्पीड़ित एवं अपमानित किया गया उसे दलित कहते हैं। 'डॉ0 श्यौराज सिंह बेचैन' दलित शब्द की परिभाषा देते हुए कहते हैं– ''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।''[1] अतः दलित उसे कहते हैं जो समाज के निचले पायदान पर स्थित है जिसे शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार एवं स्वतंत्र व्यवसाय से वंचित किया गया है। जिसे अस्पृश्य घोषित किया गया है तथा जिसकी जाति अनुसूचित जाति है।

समाज में अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों की पीड़ाओं, संवेदनाओं एवं उनके रहन–सहन को अभिव्यक्त करने वाले साहित्य को दलित साहित्य कहते हैं। दलित चिंतक 'कॅवल भारती' ने दलित साहित्य के बारे में कहा है–''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवनसंघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।''[2]

अतः स्पष्ट है कि दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को ही दलित साहित्य कहते हैं क्योंकि दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य स्हानुभूमिपरक होता है जबकि गैर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य स्वानुभूतिपरक होता है। दलित विमर्श की शुरूआत मराठी साहित्य से होती है। हिन्दी में दलित विमर्श डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित है। अम्बेडकर ने दलितों को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। राजेन्द्र यादव की हंस पत्रिका ने भी दलित विमर्श के विकास में योगदान दिया है। दलित लेखक गाँव में रहकर आम आदमी के सम्पूर्ण संघर्षो को झेलते हुए अपनी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं जिससे सम्पूर्ण समाज में उनकी आवाज गूँज जाये और उनके संघर्षो में कुछ कमी आये।

दलित विमर्श को हिन्दी साहित्य में स्थान दिलाने का कार्य दलित आत्मकथाओं ने किया है। आत्मकथा लेखक के जीवन में भोगे हुए यथार्थ क्षणों का लेखा–जोखा होती है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के अच्छे–बुरे अनुभवों को ईमानदारी से अभिव्यक्त करता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की आत्मकथा 'मी कसा झालों' से प्रभावित होकर दलित लेखकों ने आत्मकथा लिखना प्रारम्भ किया, जो दलित समाज के यथार्थ रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। डॉ0 भगवानदास का कथन है कि ''आत्मकथा लिखना दलितों के लिए फायदेमन्द होगा, क्योंकि इस तरह न केवल इतिहास जिंदा रहेगा बल्कि वे अनुभव भी जिन्दा रहेंगे जो गलत काम करने वालो की सही तस्वीर तथा भविष्य में प्रेरणा देने का जरिया भी बन सकेंगे। आत्मकथा व्यक्ति अधिकार से लिखता है। यह मौलिक कृति होती है।''[3]

आत्मकथा लेखन से दलित लेखकों में प्रेरणा का संचार होगा और वे अपने अधिकारों के प्रति जागृत होगें जिसके परिणाम स्वरूप उनमें हीनता की भावना कम होगी। हिन्दी की पहली दलित आत्मकथा मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिजंरे है; जो दो भागों में है अपनी आत्मकथा में मोहनदास नैमिशराय ने अपने जीवन के तल्ख एवं निर्मम अनुभवों को उकेरा है।

चर्चित दलित लेखक 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' ने अपनी आत्मकथा 'जूठन की भूमिका में लिखा है ''दलित–जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभवदग्ध है। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज–व्यवस्था में हमने साँसें ली है जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी।''[4]

जूठन में वाल्मीकि जी ने समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव का खुला वर्णन किया है दलित जाति में पैदा होने के कारण उन्हें यातनामय पीड़ित जीवन व्यतीत करना पड़ा। हमारी सामाजिक व्यवस्था, दलितों के लिए क्रूर एवं अमानवीय है जहाँ कुत्तों को तो पाला जाता है लेकिन दलितों को अछूत एवं दलित समझा जाता है। गाँधी जी और अम्बेडकर के प्रयास से तत्कालीन समय में दलितों को स्कूल में प्रवेश की अनुमति मिल गयी थी किन्तु समाज में लोगों की मानसिकता में कोई अन्तर नहीं आया था। वे उन्हें अछूत एवं घृणित ही समझते थे।

वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन का एक प्रसंग ''त्यागियों के बच्चें 'चूहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी–कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब सी यातनापूर्ण जिन्दगी थी, जिसने मुझे अन्तर्मुखी और चिड़चिड़ा, तुनकमिजाजी बना दिया था। स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपम्प के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपम्प छूने पर बावेला हो जाता था। लड़के तो पीटिते ही थे, मास्टर लोग भी हैडपम्प छूने पर सजा देते थे। तरह–तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ, और मैं भी उन्हीं कामों में लग जाऊँ, जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था।

उनके अनुसार स्कूल आना मेरी अनधिकार चेष्ठा थी।''[5]

हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी थी कि दलित बच्चे को स्कूल में पढ़ाने के बजाय उनसे झाड़ू लगवाया जाता था एवं जाति के नाम पर भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है, जिससे बच्चे स्कूल आना छोड़ दें। क्योंकि सामन्ती वर्ग के लोगों को पता था कि कअगर ये शिक्षित होंगे तो इनके अन्दर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष की प्रेरणा उत्पन्न होगी। दलित वर्ग के लोगों को दिन भर हाड़तोड़ मेहनत करने के बावजूद दो वक्त की रोटी नसीब नहीं होती है। मनुष्य की भूलभूत आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा, मकान भी दलित वर्ग के लिए दुर्लभ है। ''शादी –ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बाराती खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े–बड़े टोकरे लेकर बैठ रहते थे। बरात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तले उन टोकरों में डाल दी जाती थी, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे–खुचे टुकड़े, एक–आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बांछे खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी।''[6] दलित वर्ग के लोग दिन–रात मेहनत करने के बावजूद पत्तलों में बचे हुए जूठन खाने को मजबूर थे। जब वाल्मीकि जी देहरादून की आर्डनेंस फैक्टरी में काम कर रहे थे तो उन्हें मकान ढूंढने में काफी परेशानी हुई उन्हें दलित वर्ग का जानकर कोई अपने यहाँ किराये पर नहीं रखना चाहता था। दलित वर्ग के संघर्षो कष्टों संवेदनाओं का सजीव चित्रण वाल्मीकि ने किया है।

डॉ0 तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' के तीन भाग भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि अकाल में अंधविश्वास, भुतनिया नागिन में दलित वर्ग में फैले अंधविश्वास को उजागर किया गया है। मुदर्हिया का एक प्रसंग –''इसी बीच दादाजी एक दिन खलिहान में रात को सोए हुए थे कि साही संतरिन भूत लाठी लेकर आया और उसने दादाजी को पीट–पीटकर मार डाला। दादा जी को मैंने कभी नहीं देखा था, क्योंकि उनकी यह भुतही हत्या मेरे जन्म से अनेक वर्ष पूर्व हो चुकी थी। इस हत्या की गुत्थी मेरे लिए आज भी एक उलझी हुई पहेली बनी हुई है।''[7] मुर्दहिया में भूतप्रेत जादू टोना इत्यादि अंधविश्वास भरा पड़ा है। यदि किसी के सर पर कौआ बैठ जाता है तो उसे अपशकुन माना जाता है। डॉ0 तुलसीराम की दायी आँख चेचक की वजह से खराब हो गयी जिससे दलित समाज ने लोग उन्हें देखना अपशकुन मानते थे। डॉ0 तुलसीराम ऐसे रूढ़िवादी समाज से लड़ते हुए ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ते है और दलित वर्ग के लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनते हैं। 'मणिकर्णिका' में बनारस के रहन–सहन एवं सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन हैं।

दलित स्त्री आत्मकथाओं में उनकी पीड़ा और भी गहरी और संवेदनशील है इन दलित स्त्रियों को दोहरी पीड़ाओं को झेलना पडता है, एक दलित होने की दूसरा स्त्री होने की। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' और कौसल्या बैसन्त्री की 'दोहरा अभिशाप' में दलित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति एवं उनके ऊपर थोपी गयी पुरूषवादी मानसिकता को वर्णित किया गया। सुशीला अपनी आत्मकथा में लिखती है–''मेरा दर्द उस शिक्षित सम्मानित दलित का दर्द है जो पी–एच0डी0 प्राप्त कालेज की प्राध्यापिका होने के बाद भी जाति के रोजगार के नाम से जानी जाती है। मेरी आत्मकथा मेरी वेदना का दस्तावेज है।''[8] सुशीला के उच्च शिक्षित होने के बावजूद उन्हें पति के लातघूसों एवं गाली–गलौज का सामना करना पड़ता है। उन्हें उनकी जाति के नाम पर अपमानित एवं तिरस्कृत किया जाता है। कौसल्या बैसन्त्री लेखिका न होते हुए भी अस्पृश्य समाज में पैदा होने की पीड़ा एवं पति से प्राप्त पीड़ा को

शब्दबद्ध करने की कोशिश में आत्मकथा लिखती है।

हिन्दी की अन्य दलित आत्मकथाओं सूरजपाल चौहान की तिरस्कृत और सन्तप्त के नाथ की तिरस्कार, माता प्रसाद की झोपड़ी से राजभवन, धर्मवीर की मेरी पत्नी और भेड़ियाँ इत्यादि में भी दलित वर्ग की पीड़ाओं, संवेदनाओं एवं समाज से मिलने वाले तिरस्कार को वर्णित किया गया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जूठन की भूमिका में लिखते है–''तमाम कष्टों यातनाओं, उपेक्षाओं प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएं मैंने भोगी। स्वयं को परत दर परत उधेड़ते हुए कई बार लगा–कितना दुखदायी है यह सब!''[9] दलित आत्मकथा लेखकों ने आत्मकथा लिखते समय अपने जीवन की उन पीड़ाओं को एक बार फिर महसूस किया है जो उन्हें समाज के द्वारा दी गयी थी।

दलित आत्मकथाओं में समाज के द्वारा थोपी गयी मान्यताओं अंन्धविश्वासों एवं सामाजिक परिवेश को उजागर किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा भले ही दलितों को समानता का अधिकार प्राप्त है तथा उन्हें शिक्षा प्राप्त करने एवं मंदिरों में प्रवेश की अनुमति है किन्तु समाज के सामन्ती लोगों द्वारा उन्हें तिरस्कृत एवं अपमानित किया जाता रहा है, उन्हें अछूत समझा जाता है। इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ दलित वर्ग के लोगों के रहन–सहन, सामाजिक परिवेश को उजागर करने में सफलता अर्जित की हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली तीसरा संस्करण 2019, पृष्ठ सं0–13।
2. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली तीसरा संस्करण 2019, पृष्ठ सं0–14।
3. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली तीसरा संस्करण 2019, पृष्ठ सं0–19।
4. वाल्मीकि ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली, पन्द्रहवाँ संस्करण 2020, पृष्ठ सं0–7।
5. वाल्मीकि ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली, पन्द्रहवाँ संस्करण 2020, पृष्ठ सं0–13।
6. वाल्मीकि ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली, पन्द्रहवाँ संस्करण 2020, पृष्ठ सं0–19।
7. डॉ0 तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, सातवां संस्करण 2019, पृष्ठ सं0–9।
8. टाकभौरे सुशीला, शिकंजे का दर्द, पृ0सं0–7
9. वाल्मीकि ओमप्रकाश, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली, पन्द्रहवाँ संस्करण 2020, पृष्ठ सं0–8।